128862 - क्या इस्लाम गैर-मुसलमानों को दया और करुणा की दृष्टि से देखता है ?

प्रश्न

मानवता के प्रति इस्लाम का क्या दृष्टिकोण है ? क्या वह दूसरों से उनके धर्म और नस्ल या जाति की परवाह किए बिना एक इंसान होने के नाते प्रेम और सम्मान करने का प्रोत्साहन देता है ?

विस्तृत उत्तर

हर प्रकार की प्रशंसा और गुणगान केवल अल्लाह तआला के लिए योग्य है।.

प्रथम :

मानवता के प्रति इस्लाम का दृष्टिकोण दया और करुणा से परिपूर्ण है, और वह इसके अलावा कुछ और हो ही नहीं सकता। इसका कारण यह है कि इस्लामी धर्म उन सभी धर्मों में अंतिम धर्म है जिन्हें अल्लाह तआला ने निर्धारित किया और सभी लोगों को इसमें प्रवेश करने का आदेश दिया है।

इसी तरह, अल्लाह तआला ने इस धर्म की वह्य और इसका अवतरण सबसे अधिक दयालु प्राणी — मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम — के हृदय पर किया है। इसकी पुष्टि अल्लाह तआला की किताब में उसके इस कथन से होती है : وَمَا أَرْسَلْنَاكَ إِلَّا رَحْمَةً لِلْعَالَمِينَ "और (ऐ नबी !) हमने आपको समस्त संसारों के लिए केवल दया बनाकर ही भेजा है।" (सूरतुल-अंबिया : 107)

हम क़ुरआन, सुन्नत, तथा नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की जीवनी से ऐसे अनेक प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं जो इस अर्थ की पुष्टि करते हैं। यह बात कई रूपों में स्पष्ट होती है, जिनमें से कुछ ये हैं :

1. इस्लाम की ओर आमंत्रित करना, तथा लोगों को शिर्क व कुफ़्र से बचाना।

इस विषय में क़ुरआन और सुन्नत में मुसलमानों को आदेश दिया गया है कि वे लोगों को अल्लाह की तौहीद (एकेश्वरवाद) की ओर बुलाएँ, और इस मार्ग में अपने धन, समय और यहाँ तक कि अपने प्राण तक न्योछावर कर दें। यह सब कुछ केवल और केवल संपूर्ण मानवता के प्रति दया के कारण है — ताकि लोगों को बंदों की बंदगी से निकालकर बंदों के रब की बंदगी की ओर लाया जाए, और उन्हें दुनिया की तंगी से निकालकर दुनिया और आख़िरत की विशालता की ओर ले जाया जाए।

अल्लाह तआला फ़रमाता है :

وَلْتَكُنْ مِنْكُمْ أُمَّةٌ يَدْعُونَ إِلَى الْخَيْرِ وَيَأْمُرُونَ بِالْمَعْرُوفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَأُولَئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُونَ

“और तुम में से एक समूह ऐसा होना चाहिए जो भलाई की ओर बुलाए, नेक कामों का आदेश दे और बुराइयों से रोके ; और वही लोग सफल होने वाले हैं।” (सूरत आले-इमरान : 104)

2. माता-पिता के साथ भलाई करना और उनके साथ अच्छा व्यवहार करना — भले ही वे काफ़िर हों।

बल्कि चाहे वे अपने बच्चों को इस्लाम से रोकने के लिए संघर्ष करें, और उन्हें शिर्क व कुफ़्र का आदेश दें! इस विषय में अल्लाह तआला फ़रमाता है :

وَوَصَّيْنَا الْإِنْسَانَ بِوَالِدَيْهِ حَمَلَتْهُ أُمُّهُ وَهْناً عَلَى وَهْنٍ وَفِصَالُهُ فِي عَامَيْنِ أَنِ اشْكُرْ لِي وَلِوَالِدَيْكَ إِلَيَّ الْمَصِيرُ . وَإِنْ جَاهَدَاكَ عَلَى أَنْ تُشْرِكَ بِي مَا لَيْسَ لَكَ بِهِ عِلْمٌ فَلا تُطِعْهُمَا وَصَاحِبْهُمَا فِي الدُّنْيَا مَعْرُوفاً وَاتَّبِعْ سَبِيلَ مَنْ أَنَابَ إِلَيَّ ثُمَّ إِلَيَّ مَرْجِعُكُمْ فَأُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُونَ

“और हमने इनसान को उसके माता-पिता के विषय में ताकीद की है, उसकी माँ ने उसे कमज़ोरी पर कमज़ोरी के बावजूद उठाए रखा और उसका दूध छुड़ाना दो वर्ष में है, कि मेरा आभार प्रकट कर और अपने माता-पिता का। मेरी ही ओर लौटकर आना है। और यदि वे दोनों तुझपर दबाव डालें कि तू मेरे साथ उस चीज़ को साझी ठहराए, जिसका तुझे कोई ज्ञान नहीं, तो उन दोनों की बात मत मान और दुनिया में उनके साथ सुचारु रूप से रह, तथा उसके मार्ग पर चल जो मेरी ओर पलटता है। फिर मेरी ही ओर तुम्हें लौटकर आना है। तो मैं तुम्हें बताऊँगा, जो कुछ तुम किया करते थे।” (सूरत लुक़मान : 14–15)

3. पड़ोसियों के साथ अच्छा व्यवहार करने की विशेष हिदायत — भले ही वे गैर-मुसलमान हों।

संभवत: आपको इस्लाम की तरह कोई भी ऐसा धर्म, व्यवस्था या कानून नहीं मिलेगा, जो लोगों से अपने पड़ोसियों की देखभाल करने—उनका ध्यान रखने, उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा उनके अधिकारों और गरिमा की रक्षा करने—का आह्वान करता हो। अल्लाह तआला ने फ़रमाया :

وَاعْبُدُوا اللَّهَ وَلا تُشْرِكُوا بِهِ شَيْئاً وَبِالْوَالِدَيْنِ إِحْسَاناً وَبِذِي الْقُرْبَى وَالْيَتَامَى وَالْمَسَاكِينِ وَالْجَارِ ذِي الْقُرْبَى وَالْجَارِ الْجُنُبِ وَالصَّاحِبِ بِالْجَنْبِ وَابْنِ السَّبِيلِ وَمَا مَلَكَتْ أَيْمَانُكُمْ إِنَّ اللَّهَ لا يُحِبُّ مَنْ كَانَ مُخْتَالاً فَخُوراً

“तथा अल्लाह की इबादत करो और किसी चीज़ को उसका साझी न बनाओ तथा माता-पिता, रिश्तेदारों, अनाथों, निर्धनों, नातेदार पड़ोसी, अपरिचित पड़ोसी, साथ रहने वाले साथी, यात्री और अपने दास-दासियों के साथ अच्छा व्यवहार करो।

नि:संदेह अल्लाह उससे प्रेम नहीं करता, जो इतराने वाला, डींगें मारने वाला हो।" (सूरतुन-निसा : 36)

इमाम क़ुर्तुबी रहिमहुल्लाह कहते हैं :

"नौफ़ अश-शामी ने कहा : وَالْجَارِ ذِي الْقُرْبَى 'रिश्तेदार पड़ोसी' से मुराद मुसलमान है, और وَالْجَارِ الْجُنُبِ 'दूर का पड़ोसी' से मुराद यहूदी और ईसाई हैं।

मैं कहता हूँ : इस आधार पर, पड़ोसी के बारे में भलाई की वसीयत की गई है, और इसकी सिफ़ारिश की गई है, चाहे वह मुसलमान हो या काफ़िर। और यही सही मत है।

एहसान (भलाई) का अर्थ कभी सांत्वना देना और सहानुभूति रखना होता है, और कभी अच्छी संगति बनाए रखना, तकलीफ़ न पहुँचाना और उसकी रक्षा करना होता है। इमाम बुख़ारी ने आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा से और उन्होंने नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से रिवायत किया है कि आपने फ़रमाया : "जिब्रील मुझे पड़ोसी के बारे में निरंतर वसीयत करते रहे यहाँ तक कि मुझे लगा कि वह उसे वारिस बना देंगे।"

तथा अबू शुरैह रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया : "अल्लाह की क़सम! वह ईमान वाला नहीं ; अल्लाह की क़सम! वह ईमान वाला नहीं ; अल्लाह की क़सम! वह ईमान वाला नहीं।" कहा गया : ऐ अल्लाह के रसूल! कौन ? आपने फ़रमाया : "वह व्यक्ति जिसका पड़ोसी उसके बुरे कामों से सुरक्षित नहीं है।"

यह हदीस हर प्रकार के पड़ोसी को सम्मिलित है। नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने तीन बार क़सम खाकर पड़ोसी को कष्ट न देने की ताकीद की, और यह स्पष्ट किया कि जो अपने पड़ोसी को तकलीफ़ देता है, उसका ईमान पूर्ण नहीं होता। अत: एक मोमिन को चाहिए कि वह अपने पड़ोसी को कष्ट पहुँचाने से बचे, और उन चीज़ों से रुक जाए जिनसे अल्लाह और उसके रसूल ने मना किया है, और उन कार्यों की इच्छा करे जिनसे अल्लाह और उसके रसूल प्रसन्न होते हैं और जिनकी उन्होंने लोगों को करने की प्रेरणा दी है।" "तफ़सीर अल-क़ुर्तुबी" (5/183–184)

4. युद्ध में शामिल न होने वाले काफ़िर के साथ न्याय और भलाई का व्यवहार करना।

इस विषय में अल्लाह तआला फ़रमाता है :

لا يَنْهَاكُمُ اللَّهُ عَنِ الَّذِينَ لَمْ يُقَاتِلُوكُمْ فِي الدِّينِ وَلَمْ يُخْرِجُوكُمْ مِنْ دِيَارِكُمْ أَنْ تَبَرُّوهُمْ وَتُقْسِطُوا إِلَيْهِمْ إِنَّ اللَّهَ يُحِبُّ الْمُقْسِطِينَ

"अल्लाह तुम्हें उन लोगों के साथ भलाई करने और उनके साथ न्याय करने से नहीं रोकता, जिन्होंने न तो धर्म के मामले में तुमसे युद्ध किया और न तुम्हें तुम्हारे घरों से निकाला। नि :संदेह अल्लाह न्याय करने वालों से प्रेम करता है।" (सूरत अल-

मुम्तहिना : 8)

शैख़ अब्दुर्रहमान अस-सा'दी रहिमहुल्लाह कहते हैं :

"अर्थात् : अल्लाह तुम्हें मुश्रिकों के साथ — चाहे वे तुम्हारे रिश्तेदार हों या अन्य — भलाई करने, संबंध बनाए रखने, अच्छे व्यवहार का बदला अच्छे व्यवहार से देने और न्याय करने से नहीं रोकता, जब तक वे तुम्हारे साथ धर्म के कारण युद्ध के लिए खड़े न हों और तुम्हें तुम्हारे घरों से न निकालें। तो ऐसी स्थिति में उनके साथ संबंध बनाए रखने में तुम पर कोई पाप नहीं है, क्योंकि इस अवस्था में उनके साथ संबंध बनाए रखने में न कोई ख़तरा है और न कोई खराबी।" "तफ़सीर अस-सा'दी" (पृष्ठ 856)

5. समझौते में रहने वाले काफ़िर (अहद या अमान वाले) की हत्या को हराम ठहराना, और उसके बारे में कड़ी चेतावनी।

अब्दुल्लाह बिन अम्र रज़ियल्लाहु अन्हुमा से वर्णित है वह नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से रिवायत करते हैं कि आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया : "जिस व्यक्ति ने किसी ऐसे काफ़िर को क़त्ल किया जिसके साथ मुसलमानों का समझौता हो, वह जन्नत की खुशबू तक नहीं पाएगा, जबकि उसकी खुशबू चालीस साल की दूरी से महसूस की जा सकती है।" इसे बुख़ारी (हदीस संख्या : 2995) ने रिवायत किया है।

हाफ़िज़ इब्न हजर रहिमहुल्लाह कहते हैं :

"इससे अभिप्राय वह व्यक्ति है जिसका मुसलमानों के साथ कोई समझौता हो — चाहे वह जिज़्या के अनुबंध के माध्यम से हो, या शासक की ओर से किए गए युद्धविराम के द्वारा, या किसी मुसलमान द्वारा दी गई अमान (सुरक्षा) के द्वारा।"

"फ़त्हुल बारी" (12/259)

6. समझौते के अधीन रहने वाले व्यक्ति पर ज़ुल्म करने और उसपर उसकी क्षमता से अधिक बोझ डालने की मनाही।

इस विषय में अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से यह हदीस आई है कि आपने फरमाया : "सुन लो! जिसने किसी समझौते वाले व्यक्ति पर ज़ुल्म किया, या उसका हक़ कम किया, या उसपर उसकी क्षमता से अधिक बोझ डाला, या उसकी रज़ामंदी के बिना उससे कोई चीज़ ली — तो मैं क़ियामत के दिन उसकी ओर से मुक़दमा लड़ने वाला होऊँगा।" इसे अबू दाऊद (हदीस संख्या : 3052) ने रिवायत किया है और शैख़ अलबानी ने इसे 'सहीह अबू दाऊद' में सहीह कहा है।

शैख़ मुहम्मद बिन सालेह अल-उसैमीन रहिमहुल्लाह कहते हैं :

"जो काफ़िर हमारे देशों में काम करने या व्यापार के उद्देश्य से आता है, और उसे इसकी अनुमति दी जाती है, तो वह या तो

समझौते वाला (मुआहद) है, या अमान प्राप्त (मुस्ता'मन) है। अत: ऐसे व्यक्ति पर हमला करना जायज़ नहीं है। नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से प्रमाणित है कि आपने फ़रमाया : "जिसने किसी मुआहद को क़त्ल किया, वह जन्नत की खुशबू तक नहीं पाएगा।"

हम मुसलमान हैं जो अल्लाह के आदेश के आगे झुकने वाले हैं, इस्लाम ने जिन लोगों के अधिकारों का सम्मान करने का आदेश दिया है, अर्थात समझौते और सुरक्षा-प्राप्त लोग, हम उनका सम्मान करते हैं। जो व्यक्ति इन नियमों का उल्लंघन करता है, वह इस्लाम के साथ बुरा व्यवहार करता है और उसे लोगों के सामने आतंकवाद, धोखे और विश्वासघात के रूप में प्रस्तुत करता है।
और जो इस्लाम के नियमों का पालन करता है और समझौतों एवं वचनों (प्रतिज्ञाओं) का सम्मान करता है : तो यही वह व्यक्ति है जिससे भलाई और सफलता की आशा की जाती है।"

"फ़तावा शैख़ अल-उसैमीन" (25/493)

7. अत्याचार (ज्यादती) की मनाही और न्याय को अनिवार्य ठहराना।

इस विषय में अल्लाह तआला फ़रमाता है :

وَلاَ يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَآنُ قَوْمٍ أَن صَدُّوكُمْ عَنِ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ أَن تَعْتَدُواْ

"और किसी समुदाय की दुश्मनी, इस कारण कि उन्होंने तुम्हें मस्जिदे-ह़राम से रोका था, तुम्हें इस बात पर न उभारे कि अत्याचार करने लगो।" (सूरतुल-माइदा : 2)

तथा अल्लाह तआला ने फ़रमाया :

وَلاَ يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَآنُ قَوْمٍ عَلَى أَلاَّ تَعْدِلُواْ اعْدِلُواْ هُوَ أَقْرَبُ لِلتَّقْوَى

"तथा किसी समूह की शत्रुता तुम्हें इस बात पर हरगिज़ न उभारे कि तुम न्याय न करो। न्याय करो, यह तक़्वा (अल्लाह से डरने) के अधिक निकट है।" (सूरतुल-माइदा : 8).

शैख़ अश-शंक़ीती रहिमहुल्लाह कहते हैं :

"ज़रा गौर करें कि इन आयतों में कितने महान नैतिक गुण हैं, और यह आदेश दिया गया है कि जो व्यक्ति तुम्हारे बारे में अल्लाह की अवज्ञा करता है, तुम उसके साथ यह व्यवहार करो कि उसके बारे में अल्लाह की आज्ञा का पालन करो।"

“अज़वा-उल-बयान” (3/50)

दूसरी बात :

ऊपर बताई गई बातों के साथ-साथ कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों पर ज़ोर देना आवश्यक है :

1. दुनिया में जो कुछ भी ऐसा दिखाई देता है जो ऊपर वर्णित बातों के विपरीत है, वह उसके करने वालों के कर्मों की वजह से है ; उसे इस्लाम से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। वास्तव में, हर धर्म में ऐसे लोग पाए जाते हैं जो उसकी शिक्षाओं का उल्लंघन करते हैं और उसके नियमों का पालन नहीं करते।
2. धरती और उसके वासियों ने “काफ़िरों” के हाथों जो कुछ देखा है, उसकी तुलना मुसलमानों ने जो किया है, उससे बिलकुल भी नहीं की जा सकती। दो विश्व युद्ध, जिनमें लगभग 70 मिलियन (7 करोड़) लोग मारे गए, वे सब “ईसाई” राष्ट्रों के बीच हुए।

सलीबी युद्धों और अन्य संघर्षों के दौरान — ईसाइयों के हाथों — लाखों-करोड़ों मुसलमान मारे गए हैं; इसके अतिरिक्त, कम्युनिस्टों, यहूदियों, हिंदुओं और सिखों ने भी उन्हें मौत के घाट उतारा है। इसका विस्तृत विवरण देना एक बहुत लंबा काम है ; इसे वही व्यक्ति नकार सकता है जिसने अपनी बुद्धि को निष्क्रिय कर दिया हो।

इसके अलावा, मुसलमानों के देशों पर कब्ज़ा करना और उनकी संपत्तियों और संसाधनों को लूटना — यह सब पहले भी और आज भी विभिन्न धर्मों के “काफ़िरों” के हाथों होता रहा है। अत: जब मानवता के प्रति इस्लाम के दृष्टिकोण, प्रेम और करुणा पर बात की जाए, तो इन तथ्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। इतिहास के निष्पक्ष अध्ययनकर्ताओं को चाहिए कि वे दूसरे देशों पर मुसलमानों की विजयों की तुलना - उदाहरण के तौर पर - सलीबी अभियानों से करें कि दोनों में से प्रत्येक का हाल कैसा था, ताकि दया और क्रूरता के बीच, प्रेम और घृणा के बीच, जीवन और मृत्यु के बीच का अंतर स्पष्ट रूप से दिखाई दे जाए।

3. हमने पहले इस्लाम और काफ़िरों के प्रति उसके दृष्टिकोण और उसमें मौजूद अत्यंत प्रेम, करुणा और दया से भरे आदेशों का जो उल्लेख किया है, उसका मतलब यह नहीं है कि इस्लाम के उन अन्य नियमों से उपेक्षा कर लिया जाए जिन्हें हमारे धर्म को कमज़ोर बनाने वाले कुछ लोग धुंधला करने या मिटाने की कोशिश करते हैं। इनमें से कुछ ये हैं :

(क) इस्लाम में, काफ़िरों के साथ हार्दिक प्रेम और दोस्ती निषिद्ध है। जो व्यक्ति समझ रखता है, वह उस भलाई, न्याय, सहानुभूति और दया के बीच, जिनका हमें मुसलमानों से युद्ध न करने वाले काफ़िरों के प्रति दिया गया है, तथा उस हार्दिक प्रेम व मित्रता के बीच अंतर कर सकता है, जिससे हमें उन काफ़िरों के प्रति अपनाने से रोका गया है क्योंकि वे सारे संसारों के पालनहार अल्लाह के साथ कुफ़्र करते हैं और इस्लाम अपनाने से इनकार करते हैं।

(ख) हमें अपनी बेटियों, बहनों और महिलाओं का विवाह किसी भी काफ़िर से करने की अनुमति नहीं है, चाहे उसका धर्म कुछ भी हो। हाँ, मुसलमान पुरुषों के लिए केवल यहूदियों और ईसाइयों में से पवित्र (शीलवान) औरतों से विवाह करना जायज़ है। इसमें कोई शक नहीं कि इस हुक्म में अक़ीदा और तौहीद (एकेश्वरवाद) की प्रमुख भूमिका है। किसी मुसलमान से विवाहित एक किताबिया स्त्री का इस्लाम स्वीकार करना निकट और संभव है। जबकि किसी मुसलमान महिला का किसी गैर-मुसलमान से विवाह करने पर अपने धर्म से विचलित हो जाना निकट और संभावित है। यह हुक्म उस दया के बिल्कुल मुताबिक़ है, जिसे यह महान धर्म लेकर आया है — किताबिया स्त्री पर दया, शायद वह इस्लाम स्वीकार कर ले, और मुसलमान स्त्री पर दया, ताकि वह अपना धर्म न छोड़े।

(ग) इस्लाम में किसी काफ़िर को इस्लाम में प्रवेश करने के लिए मजबूर करने की अनुमति नहीं है ; क्योंकि इख़लास (निष्ठा) और सच्चाई इस्लाम की स्वीकृति की शर्तों में से हैं। अल्लाह तआला फ़रमाता है : لَا إِكْرَاهَ فِي الدِّينِ "धर्म के मामले में कोई ज़बरदस्ती नहीं है।"

(घ) इस्लाम में विवाहित व्यभिचारी के लिए रज्म (पत्थरों से मारने का दंड), चोर के लिए हाथ काटने की सज़ा, और किसी पवित्र व्यक्ति पर व्यभिचार का झूठा आरोप लगाने वाले के लिए कोड़े मारने की सज़ा निर्धारित है।

हमें इन विधानों पर कोई शर्म नहीं है, बल्कि हमारा दृढ़ विश्वास है कि पूरी दुनिया को इन्हें लागू करने की आवश्यकता है। जिन्होंने इन्हें लागू किया, वे अपने सम्मान, संपत्ति और प्राणों के बारे में सुरक्षित जीवन जीते रहे, और उन्हें किसी अपमानजनक आक्रमण का सामना नहीं करना पड़ा।

जो बुद्धिमान व्यक्ति इन नियमों पर गहराई से विचार करेगा, वह यह समझ जाएगा कि इनका विधान मूल रूप से रोकथाम के लिए किया गया है — ताकि कोई व्यक्ति ऐसे अपराध करने का साहस ही न करे। और जो व्यक्ति अन्य राष्ट्रों की स्थिति पर विचार करेगा, और बलात्कार की व्यापकता, चोरी की अधिकता, और हत्या के फैलाव को देखेगा, उसे एहसास होगा कि इन बुराइयों को रोकने की अत्यंत आवश्यकता है, और यह कि इस्लामी कानूनों में हिकमत, दया, न्याय और सुधार निहित है।